# * श्रीविद्या भगवती राजराजेश्वरी *

(अनन्तश्रीविभूषित पश्चिमाम्नायस्थ श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर एवं उत्तराम्नायस्थ ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सनातन धर्म में अनेक रूपों में परमेश्वर की आराधना-उपासना होती है। भगवान् आद्य शङ्कराचार्य को षण्मत-संस्थापक माना ही जाता है। उनके अनुसार भगवान् इन छः रूपों में उपास्य हैं- शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु और निर्गुण-निराकार ब्रह्म। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत एवं विविध आगमों में इनके रहस्य, चरित्र और उपासना के सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इनमें कहीं-कहीं श्रेष्ठता-कनिष्ठता की भी बात आती है, पर इसका तात्पर्य उपासक की अपने इष्ट में निष्ठा के दृढ़ करने में ही है, तत्त्वतः तो इनका परस्पर अभेद ही है। भगवान् विष्णु ने कहा है-

**ज्ञानं गणेशो मम चक्षुरर्कः शिवो ममात्मा मम शक्तिराद्या।**
**विभेदबुद्ध्या मयि ये भजन्ति मामङ्गहीनं कलयन्ति मन्दाः॥**

अर्थ् 'गणेश' मेरा ज्ञान है, सूर्य मेरे नेत्र हैं, शिवजी मेरी आत्मा हैं, आद्या भगवती मेरी शक्ति हैं, जो भेदबुद्धि से मेरा भजन करते हैं, वे मन्द मुझे अङ्गहीन समझते हैं।' शेष पाँच रूप सगुण-साकार हैं। इनमें शक्ति अन्यतम हैं, जिनकी उपासना विविध रूपों में की जाती है। गायत्री, भुवनेश्वरी, काली, तारा, बगला, षोडशी, त्रिपुरा, धूमावती, मातङ्गी, कमला, पद्मावती, दुर्गा आदि उन्हीं के रूप हैं।

सभी शाङ्करपीठों में भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुर-सुन्दरी की श्रीयन्त्र में परम्परा से आराधना चली आ रही है। भगवान् आद्य शङ्कराचार्य का एक ग्रन्थ है- सौन्दर्यलहरी। जिसमें भगवती के तत्त्व, रहस्य, स्वभाव और सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। उसमें उन्होंने कहा है-शिव शक्ति के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। शक्तिसंयुक्त होने पर ही वे कुछ करने में समर्थ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव उनकी आराधना करते हैं। यद्यपि मधु, क्षीर, द्राक्षा-तीनों मधुर हैं, तथापि इनमें परस्पर विलक्षणता है। पर इनके परस्पर के अन्तर को केवल जिह्वा ही जानती है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। इसी प्रकार जगदम्बे! आपके सौन्दर्य का अनुभव केवल परमशिव के नेत्र ही कर सकते हैं। आपके गुण सकल विषयों के अविषय

हैं, मैं कैसे उनका वर्णन कर सकता हूँ। अन्य देवगण अपने हाथों में अभय और वर की मुद्रा धारण करते हैं, पर शरण्ये! आप ही एक ऐसी हैं, जो हाथ में अभय तथा वर धारण करने का अभिनय नहीं करतीं, किन्तु आपको इसकी आवश्यकता ही क्या है? भय से त्राण करने और इच्छा से भी अधिक फल प्रदान करने के लिये तो आपके चरण ही पर्याप्त समर्थ हैं।

अमृत के समुद्र में मणि का एक द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षों की बारी है, नवरत्नों के नव परकोटे हैं, मध्य में कदम्ब-वन है, उस वन में चिन्तामणि से निर्मित महल में कल्पवृक्ष के नीचे ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पञ्चकृत्य के देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर आसन के पाये हैं, सदाशिव फलक हैं। सदाशिव की नाभि से निर्गत कमलपर विराजमान भगवती का जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं।

सौन्दर्य-लहरी में ज्ञान-सम्बन्ध नामक एक द्रविड शिशु की कथा आती है- उस बालक के माता-पिता राज-राजेश्वरी भगवती ललिता के परम उपासक थे और प्रतिदिन मन्दिर में जाकर विधिवत् पूजन करते थे। एक बार वे किसी काम से कहीं बाहर चले गये। माता को भी असुविधा थी। उन्होंने इस बालक को भगवती को दुग्ध का नैवेद्य लगाने के लिये भेजा। बालक ने दुग्ध का पात्र भगवती की प्रतिमा के सामने रख दिया और हाथ जोड़कर बैठ गया। देर तक प्रतीक्षा करने पर भी जब उसने देखा कि माँ जगदम्बा दुग्ध-पान नहीं कर रही हैं, तब वह रोने लगा। करुणामयी माँ ने जब रोने का कारण पूछा, तब उसने कहा- जब मेरे पिता दुग्ध का नैवेद्य लगाते थे, तब तो आप उनके हाथ से पीती थीं, मेरे हाथ से आज क्यों नहीं पी रही हैं?' भगवती माँ ने मन्दस्मित से बालक को देखते हुए सब पी लिया, किन्तु बालक ने फिर भी रोना बंद नहीं किया और कहा- '**सब क्यों पी लिया? मेरे लिये कुछ भी क्यों नहीं छोड़ा**' वात्सल्यमयी माँ ने उस शिशु को स्नेह से अपनी गोद में लेकर स्तनपान कराया। वह द्रविड शिशु दुग्धपान करते ही सकल विद्याओं में निष्णात हो गया।

'**आनन्दलहरी**' में आचार्य कहते हैं- कुछ गुणों के कारण आदरपूर्वक कुछ लोग सपर्णा वल्ली की सेवा करते हैं, पर मेरी बुद्धि तो यह कहती है कि एकमात्र अपर्णा की ही सेवा करनी चाहिये। अपर्णा लता वह है जिसमें पर्ण (पत्ते) न

हों तथा सूखे पत्ते खाकर पुनः उन्हें भी छोड़कर तप करने के कारण भगवती पार्वती का भी नाम अपर्णा है। लता वेल को भी कहते हैं, नारी को भी। अभिप्राय यह है कि यदि लता की ही सेवा करनी है तो सपर्णा के स्थान पर अपर्णा (पार्वती) की करनी चाहिये, जिससे आवेष्टित होकर पुराण स्थाणु (पुराना ठूँठ)- (शिवपक्ष में भी **पुरोऽपि नवः पुराणः कूटस्थः**) की भक्ति भी कैवल्य फल फलती है। शिव में मोक्ष प्रदान करने की शक्ति जगदम्बा के साहचर्य से ही आती है। वे माता राज-राजेश्वरी उपासकों को भोग-मोक्ष दोनों ही एक साथ प्रदान करती हैं। जब कि दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। '**मङ्गलस्तव**' में कहा गया है-

**यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगो यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः।**
**श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥**

अर्थात् 'जिसे मोक्ष है उसे भोग नहीं, जिसे भोग है, उसे मोक्ष नहीं, पर श्रीविद्या त्रिपुरसुन्दरी के सेवकों को तो ये दोनों सुलभ हैं।

तात्त्विक दृष्टि से त्रिपुर अर्थात् जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति के स्थूल, सूक्ष्म, कारण-शरीररूप तीन पुरों की जो साक्षिणी है, वह निर्विशेषा नियति ही त्रिपुरसुन्दरी है। जिस प्रकार मणि और उसकी प्रभा परस्पर अभिन्न होते हैं, उसी प्रकार शिव और शक्ति का परस्पर अभेद है। शिव को प्रकाश और शक्ति को विमर्श कहा जाता है। शक्तिदर्शन के अनुसार जब शक्ति सृष्ट्युन्मुख होती है, तब छब्बीस तत्त्वों के रूप में विलसित होकर अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड का सर्जन करती है। छब्बीस तत्त्व हैं- आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्ध, विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव।

इस दर्शन में सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह-पाँच कृत्य माने जाते हैं, जिनका देवीभागवत में भी वर्णन है। सृष्टि के ब्रह्मा, स्थिति के विष्णु, संहार के रुद्र, तिरोधान के ईश्वर और अनुग्रह के देवता सदाशिव हैं, किंतु ये पाँचों बिना शक्ति के निश्चेष्ट रहते हैं। शक्ति से संचालित होने पर ही अपना कार्य करने में समर्थ होते हैं, इसलिये इनको पञ्चप्रेत भी कहा गया है- '**पञ्चप्रेतसमासीना**'

**'पञ्चब्रह्मासनस्थिता'** (ललितासहस्रनाम) ये भगवती के नाम हैं। दशमहाविद्या और नवदुर्गा भी इन्हीं के अवतार हैं। एक बार भण्डासुर के उत्पात से जब जगत् संत्रस्त हो गया, तब भगवती त्रिपुरसुन्दरी के रूप में प्रकट हुईं। शिव की कोपाग्नि से दग्ध काम की भस्म से गणेश के साथ खेलने के लिये पार्वती ने एक पुतला बनाया और उसमें प्राण दे दिया। तब तमोगुणी पिण्ड को पाकर रमा के द्वारा शापित माणिक्यशेखर के जीवन ने उसमें प्रवेश करके क्रमशः भयंकर रूप धारण कर लिया। यही भण्डासुर की उत्पत्ति का निमित्त बना।

गणेश की प्रेरणा से उसने उग्र तपस्या करके शिव से दुर्लभ वर प्राप्त कर लिया। एक सौ आठ ब्रह्माण्डों का अधिपति बनकर उसने देवताओं को सताना प्रारम्भ कर दिया। उससे संत्रस्त और विस्थापित देवताओं ने मेरु पर्वत पर बृहस्पति के आचार्यत्व में अनुष्ठित यज्ञ में श्रीसूक्त से हवन किया। देवताओं पर अनुग्रह करके जगदम्बा अग्निकुण्ड से प्रकट हुईं। पञ्चकृत्य के देवताओं की प्रार्थना पर उन्होंने उन्हें अपना सिंहासन बनाया। समस्त देवताओं के अनुरोध से वे स्वयं दो रूपों में विभक्त होकर कामेश्वर-कामेश्वरी बन गयीं। उनका बालसूर्य के समान दिव्य तेज था, तीन नेत्र थे और चार भुजाएँ थीं। उनमें वे इक्षुधनु, पुष्पबाण, पाश और अङ्कुश धारण किये थीं। उनके वस्त्र लाल थे और वे दिव्य आभूषणों से आभूषित थीं। कामेश्वर का भी वैसा ही स्वरूप था। श्रीचक्रनगर को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। राजश्यामला उनकी मन्त्रिणी और वाराही उनकी सेनाध्यक्षा बनीं। अपने ही अंश से अनेक रूप धारण कर उन्होंने नगर बसाया।

देवताओं ने बताया कि भण्डासुर के त्रास से मुक्ति पाने के लिये उन्होंने उनकी आराधना की है। भगवती ने शून्यक-नगर-निवासी उस भण्डासुर दैत्य के पास श्रीनारद के द्वारा संदेश भेजा कि देवताओं को सताना छोड़ दे, किंतु वह न माना। अन्ततोगत्वा भण्ड दैत्य के साथ उनका भयङ्कर युद्ध हुआ। भण्ड समस्त आसुरी शक्तियों के साथ युद्ध कर रहा था। एक बार वह स्वयं ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल, दन्तवक्र, कंस आदि के रूप में युद्ध करने आया, पर राजराजेश्वरी ने अपनी कराङ्गुलियों से नारायण के दश अवतारों को उत्पन्न करके उन सबका संहार कर दिया। इस युद्ध में वाराही राजश्यामला और बाला ने भी

अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया। अन्त में कामेश्वरास्त्र से भगवती त्रिपुरेश्वरी ने उसे भस्म कर दिया; क्योंकि अन्य किसी प्रचलित अस्त्र से वरदान के कारण उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। यह उनकी समस्त आसुरी शक्तियों पर विजय थी।

इन भगवती की उपासना श्रीचक्रपर की जाती है। कहा है- **'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'**। यह श्रीचक्र शिवाशिव दोनों का शरीर है। **'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'** के सिद्धान्तानुसार उपासना के प्रारम्भ में भूशुद्धि, भूतशुद्धि करके विविध न्यासों से साधक अपने देह को मन्त्रमय बनाता है। पात्रासादन करके पूजनोपयोगी द्रव्योंको शुद्ध करता है। एतदर्थ वर्धनी कलश, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य, गुरुपात्र, आत्मपात्र मन्त्रों से संस्कृत मण्डलों में स्थापित किया जाता हैं। विशेषार्घ्य में मत्स्य-मुद्रा से त्रिकोण बनाकर मूल त्रिखण्ड की भी उसमें भावना की जाती है। त्रिकोण के मध्य में बिन्दु की भावना करके वाम-दक्षिण पार्श्वमें **'हं' 'सः'** लिखा जाता है। फिर विशेषार्घ्य को वह्निकला, सूर्यकला, सोमकला, ब्रह्मकला, विष्णुकला, रुद्रकला, ईश्वरकला और सदाशिवकला से अभिमन्त्रित करके कतिपय वैदिक मन्त्रों से संस्कृत किया जाता है।

शांकरपीठों में विशेषार्घ्य के लिये गोदुग्ध या फलों के रस का प्रयोग करने की परम्परा है। उसमें मधु, शर्करा, आर्द्रकखण्ड निक्षिप्त होता है। विशेषार्घ्यपात्र से कुछ द्रव्य गुरुपात्र में लेकर गुरुत्रय का पूजन कर आत्मपात्र में वही द्रव्य डालकर मूलाधार में बालाग्रमात्र अनादि वासनारूप ईन्धन प्रज्वलित कुण्डलिनी में अधिष्ठित चिदग्निमण्डलका ध्यान करके पुण्य-पाप, कृत्य, सङ्कल्प-विकल्प, धर्म-अधर्म सबका कुण्डलिनीरूप चिदग्नि में हवन कर निर्विशेष ब्रह्मरूप से अवस्थित होकर अन्तर्याग करने का विधान है। इसमें सुषुम्ना के भीतर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त विस्तृत दिव्य प्रकाश में अधःसहस्रार, विषुव, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा-इन नौ चक्रों में श्रीचक्र के नौ आवरण-देवताओं की ब्रह्मरन्ध्र-विनिःसृत पञ्च-तत्त्वों के सार से पञ्चोपचार पूजा करके समस्त उपचारों और आवरण-देवताओं का देवी के चरणों में विलय की भावना कर उन्हें अपनी आत्मा से अभिन्न समझा जाता है। पुनः उसी आत्मा से अभिन्न पर-चिति को ब्रह्मरन्ध्र से पुष्पद्वारा श्रीचक्र में लाकर आवरण-देवताओं के रूप में परिणत कर ध्यान-आवाहन करके चतुःषष्ट्युपचार या षोडशोपचार पूजन के पश्चात् तत्त्वशोधन किया

जाता है। इस प्रकार ब्रह्म से प्रपञ्च की उत्पत्ति और ब्रह्म में ही उसके लय की भावना जिसका स्वरूप है, वह निदिध्यासन इस पूजन में स्वतः हो जाता है। अन्त में प्रार्थना और शान्तिपाठ के पश्चात् पुनः आत्मरूप से उनकी स्थापनारूप विसर्जन किया जाता है। योगीजन भगवती त्रिपुरसुन्दरीको कुण्डलिनी के रूप में देखते हैं। *भगवान् शंकराचार्य ने कहा है-*

**महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं**
**स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।**
**मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं**
**सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।**

अर्थात् 'हे कुण्डलिनीरूपे भगवती! तुम मूलाधार में पृथ्वीतत्त्व, मणिपूर में जल-तत्त्व (स्वाधिष्ठान), स्वाधिष्ठान में अग्नितत्त्व (मणिपूर), अनाहत में वायुतत्त्व, विशुद्धि में आकाशतत्त्व, आज्ञा में मनस्तत्व को पार करके सहस्रार में अपने पति परमशिव के साथ एकान्त में विहार करती हो।'

इसी का संकेत करती हुई मीरा कहती है-

**हे री मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय।।**
**शूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलना होय।**
**गगन-मण्डल पर सेज पिया की किस विध सोना होय।**

इस प्रकार देखा जाय तो अनन्त ब्रह्माण्ड-जननी कल्याणमयी करुणामयी राजराजेश्वरी श्रीचक्रनगर-साम्राज्ञी श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी की आराधना-उपासना सभी के लिये कल्याणकारी है। जो लोग इस प्रकार आराधना करने में असमर्थ हैं, वे उनके नाम का जप करके भी उनका अनुग्रह प्राप्त कर सकते हैं। नारियों के लिये कहा गया है कि पुरुषों को जो सिद्धि त्रैपुर मन्त्र के जप से तीन वर्ष में प्राप्त होती है, वह सिद्धि स्त्रियों को एक ही दिन में प्राप्त हो जाती है।